दक्षिण दिशा में देवकुरू नामक युगलिक क्षेत्र है तथा उत्तर दिशा में उत्तरकुरु नामक युगलिक क्षेत्र है। इन दोनों युगलिक क्षेत्र की मर्यादा बांधनेवाले हाथी के दांत के आकार वाले गजदन्त नामक पर्वत है। अब आप चित्र को देखिए। बिल्कुल मध्य में मेरु पर्वत है उसके दोनों तरफ देवकुरु उत्तरकुरु नामक युगलिक क्षेत्र है जिन्होंने महाविदेह क्षेत्र को दो भाग में विभाजित कर दिया है। पूर्व महाविदेह एवं पश्चिम महाविदेह।

महाविदेह क्षेत्र की मर्यादा दोनों तरफ से पर्वतों ने बांधी है दक्षिण की तरफ निषेध पर्वत है। तथा उत्तर की तरफ नीलवंत पर्वत है। निषध पर्वत पर तिगिच्छी नामक द्रह–सरोवर है, जिसमें 'धी' नामक देवी का निवास है। इस द्रह से सीतोदा नामक नदी निकल कर देवकुरु क्षेत्र के प्रपातकुण्ड में गिरती है तथा वहाँ से आगे बढ़ती हुई मेरु पर्वत के पास आकर पलटती हुई गजदन्त पर्वत को भेदकर पश्चिम महाविदेह के मध्य में होकर आगे बढ़ती हुई लवण समुद्र में मिल जाती है। इस विशाल नदी के कारण पश्चिम महाविदेह के दो भाग हो जाते है। ठीक उसी तरह नीलवंत पर्वत पर केशरी द्रह–सरोवर है। इस द्रह से सीता नामक नदी निकलकर मेरु पर्वत के पास से पलटकर गजदन्त पर्वत को भेदकर पूर्व महाविदेह के मध्य में होकर लवण समुद्र से मिलती है। पूर्व महाविदेह के भी दो भाग हो जाते है।

निषध पर्वत के दक्षिण दिशा में हरिवर्ष नामक युगलिक क्षेत्र है। जिसे मध्य में वृत वैताढ्य नामक पर्वत है। निषध पर्वत वाले तिगिच्छी द्रह से हरिसलीला नामक नदी निकलकर वृत वैताढ्य पर्वत के पास आकर पलटती हुई पूर्व दिशा में आगे बढ़ती हुई पूर्व लवण समुद्र में मिलती है।

हरिवर्ष क्षेत्र की मर्यादा बांधने वाला एक पर्वत तो निषध है दूसरा पर्वत हे महाहिमवन्त पर्वत। महाहिमवंत पर्वत पर महापद्म नामक द्रह है। उससे हरिकांता नामक नदी निकलकर हरिवर्ष क्षेत्र में होकर वृत वैताढ्य पर्वत के पास से मुड़कर पश्चिम दिशा की तरफ आगे बढ़कर पश्चिम लवण समुद्र में मिल जाती है।

महाहिमवंत पर्वत से दक्षिण दिशा में हिमवत नामक युगलिक क्षेत्र है। उसमें भी वृत वैताढ्य पर्वत है तथा महाहिमवंत पर्वत के महापद्म से रोहिता नदी निकलकर वृत वैताढ्य पर्वत के पास से मुडकर पूर्व लवण समुद्र में मिलती है। हिमवंत क्षेत्र की मर्यादा उत्तर की तरफ से तो महाहिमवंत पर्वत ने बांधी है दक्षिण दिशा में हिमवंत नामक पर्वत है उसने हिमवंत क्षेत्र की मर्यादा बांधी है। हिमवंत पर्वत पर पद्मद्रह है, जहाँ लक्ष्मीदेवी का निवास है। उस द्रह से रोहिताशा नदी निकलकर हिमवंत क्षेत्र में वृत वैताढ्य के पास से पलटकर पश्चिम लवण समुद्र में मिलती है।

हिमवंत क्षेत्र के दक्षिण दिशा में भरत क्षेत्र है जिसमें आप और हम रहते है। भरतक्षेत्र की मर्यादा एक ओर तो हिमवंत पर्वत ने बांधी है तो दूसरी और अर्ध चन्द्राकार से लवण समुद्र ने।

आप चित्र देख रहे है ना.....?

अब महाविदेह क्षेत्र से उत्तर की ओर महाविदेह की सीमा बांधने वाला निलवंत पर्वत है।

जिस पर केशरी नामक द्रह है। हमने पहले भी बता दिया था की केशरी द्रह से सीता नामक नदी निकल कर पूर्व महाविदेह में होकर पूर्व लवण समुद्र में मिलती है।

उस नीलवत पर्वत से उत्तर दिशा की ओर रम्यक् नामक युगलिक क्षेत्र है। उसके मध्य में पूर्व की तरह ही वृतवैताढ्य पर्वत के पास से मुड़कर रम्यक क्षेत्र में पश्चिम दिशा की ओर आगे बढ़कर पश्चिम लवण समुद्र में मिलती है। रम्यक क्षेत्र की उत्तर दिशा में उसकी मर्यादा बांधने वाला 'रूक्मी' नामक पर्वत है। उस पर महापुण्डरीक नामक द्रह है। उससे 'नरकांता' नामक नदी निकलकर रम्यक क्षेत्र में वृतवैताढ्य पर्वत के पास से पलटकर पूर्व लवण समुद्र में मिलती है।

रूक्मी पर्वत की उत्तर दिशा की ओर 'ऐरण्यवन्त' नामक युगलिक क्षेत्र है। उसमें भी मध्य में वृतवैताढ्य पर्वत है। और महापुण्डरीक द्रह से 'रूप्यकुला' नामक नदी निकलकर वृतवैताढ्य के पास से मुढ़कर पश्चिम लवण समुद्र को मिलती है।

ऐरण्यवत क्षेत्र की उत्तर सीमा पर 'शिखरी' नामक पर्वत है। उस पर 'पुण्डरीक' नामक द्रह है। पुण्डरीक द्रह से 'सुवर्णकुला' नामक नदी निकलकर एरण्यवत क्षेत्र में वृतवैताढ्य पर्वत के पास से पलटकर पूर्व लवणसमुद्र में मिल जाती है। शिखरी पर्वत के उत्तर दिशा में ऐरवत क्षेत्र है। उसके उत्तर में लवणसमुद्र अर्धचन्द्रकार में फैला हुआ है। हाँ तो अब सामान्यतया आप जम्बूद्वीप का नक्शा अब अच्छी तरह से समझ गये होंगे। अब हम आपको तिर्च्छालोक में रहे जम्बूद्वीप के शाश्वत जिनालयों के स्थान बात रहे है।

जम्बूद्वीप में दक्षिण लवण समुद्र से लगा हुआ 'भरत' नामक क्षेत्र है। यह कर्म भूमि कहलाती है। यहाँ असी मसी और कृषि का व्यापार होता है। याने जहाँ खेती, हथियार, स्याही आदि से व्यवहार कर्म भूमि में तीर्थंकर चक्रवर्ती, बलदेव चलता है वह कर्मभूमि कहलाती है, वासुदेव और प्रतिवासुदेव होते है। साधुधर्म एवम् श्रावक धर्म भी यही होता है तथा मोक्ष गमन भी कर्मभूमि से ही होता है।

हाँ तो भरतक्षेत्र के 6 खण्ड होते है। जिन्हें यहाँ जन्म लेने वाले सभी चक्रवर्ती साधते है। याने चक्रवर्ती वहीं कहलाता है जो भरतक्षेत्र के 6 खण्डों के सभी राजा महाराजाओं का स्वामी हो। जिसने छह खण्ड पर विजय प्राप्त की हो।

सर्वप्रथम हम आपको यहाँ भरतक्षेत्र और 6 खण्ड का चित्र बता रहे है। देखिए चित्र में

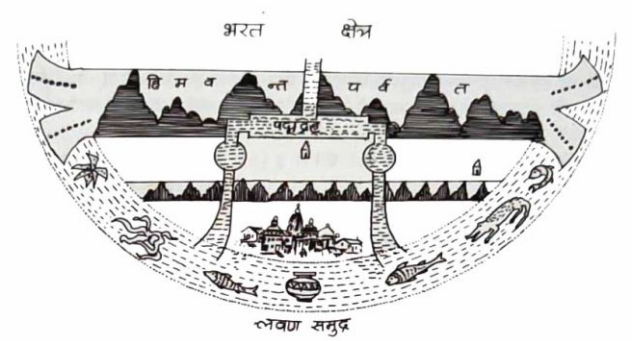

भरत क्षेत्र की मर्यादा बांधने वाला 'हिमवन्त' नामक पर्वत है जो की पूर्व पश्चिम लम्बा है। तथा दक्षिण दिशा में जम्बू द्वीप की जगानी (कोट) है और फिर लवण समुद्र है। भरत क्षेत्र 526 योजन और 6 कला प्रमाण है। उसके ठीक मध्य में पूर्व पश्चिम लम्बा वैताढ्य पर्वत है जिसने भरत क्षेत्र को दो भागों में विभाजित किया। वैताढ्य पर्वत याने विद्याधरों की दुनियाँ। इस वैताढ्य पर्वत पर ही भगवान आदिनाथ की दीक्षा के पश्चात् उनकी भक्ति के प्रभाव से प्रसन्न होकर धरणेन्द्र ने नमि विनमि को रोहिणी आदि चार महाविद्या एवं अन्य विद्याएं देकर यहाँ गगनवल्लभादि नगर एवं रथनूपुर चक्रवालादि नगर बनाकर बसाया था। वहीं से विद्याधर वंश का प्रारम्भ हुआ। बस इसी वैताढ्य पर्वत के पूर्व दिशा के कोने में एक शाश्वत जिन मंदिर है।

आप जानते है कि लघु हिमवत पर्वत पर पद्मग्रह है। उसमें से गंगा एवं सिंधु नदी निकल कर लघुहिमवंत पर्वत पर कुछ बहती हुई भरतक्षेत्र में गिरती है। वहाँ दोनों ओर प्रपात कुण्ड है। जिन्हें गंगा प्रपात कुण्ड एवं सिन्धु प्रपात कुण्ड कहते है। वहाँ से वे दोनों नदी आगे बढ़ती हुई वैताढ्य पर्वत को भेदती हुई भरत क्षेत्र में बहती हुई लवण समुद्र में मिल जाती है। जिन्हें 6 खण्डे कहते है।

हाँ तो जो गंगा प्रपात कुण्ड व सिन्धु प्रपात कुण्ड है जिसमें लघु हिमवंत पर्वत से गंगा सिन्धु नदी में गिरती है वहाँ दोनों प्रपात कुण्ड में भी एक एक जिनालय है। अब आप समझ ही गए होंगे कि भरत क्षेत्र में कुल (तीन) 3 शाश्वत जिनमंदिर है।

भरतक्षेत्र के 6 खण्ड में दक्षिण के मध्यखण्ड में ही 63 शलाका पुरूषों के जन्म होते है। चक्रवर्ती की राजधानी भी मध्यखण्ड में होती है। मध्यखण्ड में ही आर्य मनुष्यों का निवास होता है। अन्य 5 खण्ड अनार्य मनुष्य के है। चौथे खण्ड में ऋषभकुट है जहाँ चक्रवर्ती अपना नाम लिखता है।

आज की वर्तमान दुनिया मध्यखण्ड के दक्षिण कोने में बसी हुई है। आपको ध्यान होगा कि शांति स्नात्रादि महापूजनों में बोला जाता है अस्मिन् जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे दक्षिणार्ध भरते मध्यखण्डे इत्यादि.....।

हाँ तो आप यह जान गए है कि भरत क्षेत्र में 3 जिनालय शाश्तव है। अब भरत क्षेत्र की मर्यादा करने वाला लघु हिमवन्त पर्वत है उसके उपर 'पद्म' नामक द्रह है जो कि 1000 योजन लम्बा 500 योजन चौड़ा एवं 10 योजन की गहराई वाला है जहा1 कमल के पुष्प पर लक्ष्मी देवी का निवास है पूर्व में भी बताया ही है कि इस द्रह से गंगा सिन्धु नामक दो नदियाँ निकलती है। यहीं वह पद्मग्रह है। इस लक्ष्मी देवी के निवास रूप पद्मग्रह में एक शाश्वत जिनमंदिर है। और एक जिन मंदिर है लघु हिमवन्त पर्वत के कोने पर। अतः लघु हिमवंत पर्वत के कुल 2 (दो) जिन मंदिर शाश्वत है।

भरत क्षेत्र की अपेक्षा से उत्तर दिशा में एंव महविदेह क्षेत्र की अपेक्षा से दक्षिण दिशा में 'हिमवत' नामक युगलिक क्षेत्र आता है।

सर्वप्रथम हम आपको युगलिक क्षेत्र की कुछ जानने जैसी बाते बात रहे है। जहा असि मसि

और कृषि का व्यवहार नहीं होता है, वे स्थान या क्षेत्र अकर्मभूमि कहलाते है। वहाँ युगलिक मनुष्य निवास करते है। युगलिकों का जीवन अल्प कषायी होता है। वे कल्पवृक्ष के आश्रय से अपना जीवन यापन करते है। कल्पवृक्ष से ही उन्हें खाना पीना–आभूषण एवं जीवन यापन की सभी वस्तुओं की प्राप्ति होती है। युगलिकों का जन्म भाई बहन के जोड़े से होता है। बड़े होकर वे पति पत्नी बनकर जीवन व्यतीत करते है। जब आयुष्य मात्र 6 महिने की बाकी रहती है। युगलिक अन्त समय में छींक या जम्भाई जैसी सामान्य पीड़ा–दुःख भोगकर मृत्यु को पाते है। तथा देवगति में जन्म लेकर देवताई ऋद्धि सिद्धि भोगते है।

हाँ तों हम मूल बात पर आऐं। हिमवंत नामक युगलिक क्षेत्र के मध्य में वृत्त वैताढ्य नामक पर्वत है जो कि 1000 योजन ऊँचा गोल प्याले के आकार का है, जिसे शब्दपाती पर्वत के नाम से शास्त्रों से पुकारा गया है। उस पर्वत के शिखर पर एक शाश्वत जिन चैत्य है।

हमने आपको पूर्व में बताया ही है कि लघु हिमवंत पर्वत पर पद्मग्रह से रोहिताशा नदी निकलकर हिमवंत क्षेत्र में रोहिताशा नामक प्रपात कुण्ड में गिरती है और वहां से हिमवंत क्षेत्र में वृत्तवैताढ्य (शब्दपाती) पर्वत के पास से मुडकर पूर्व लवण समुद्र में मिलती है। हम यह भी आपको बात ही चुके है कि महाहिमवत् पर्वत पर महापद्म द्रेह है उसमें से रोहिता नदी निलकर हिमवत क्षेत्र में स्थित रोहिता प्रपात कुण्ड में गिरती है तथा वहाँ से वृत्तवैताढ्य (शब्दपाती) पर्वत के पास से मुडकर वह रोहिता नदी पश्चिम लवण समुद्र में मिल जाती है।

ये नदी गिरने जो प्रपात कुण्ड है उनमें एक एक शाश्वत जिनमंदिर है। अतः एक जिनालय वृत्त वैताढ्य का एवं दो रोहितांशा प्रपात कुण्ड एवं रोहिता प्रपात कुण्ड के मिलकर लघु हिमवत युगलिक क्षेत्र के शाश्वत तीन जिन मंदिर है।

अब आपको ध्यान पूर्वक पढ़ना है। जम्बूद्वीप में महाविदेह को छोड़कर अन्य चार युगलिक क्षेत्र है। उनके नाम हमने पहले भी बताए थे। अब फिर बता रहे है। 1 हिमवत क्षेत्र, 2 हरिवर्ष क्षेत्र, 3 रम्यक् क्षेत्र तथा ऐरण्यवत क्षेत्र।

अभी हमने आपको बताया कि हिमवंत क्षेत्र में 3 जिनालय है। ठीक उस तरह इन अन्य युगलिक क्षेत्रों में उसी स्थान पर जिनालय है। अतः $4 \times 3 = 12$ जिनालय युगलिक क्षेत्र के शाश्वत है।

अब पर्वत कि क्षेत्रों की मर्यादा बाँधते हे वे 6 है। उनके नाम निम्न है 1 लघुहिमवत पर्वत 2 महाहिमवंत पर्वत 3 निषध पर्वत 4 नीलवंत पर्वत 5 रूक्मी पर्वत और 6 शिखरी पर्वत है।

अभी भरत क्षेत्र के 3 जिनालय बता ही चूके है ठीक उसी तरह उत्तर लवण समुद्र से लगा हुआ भरत क्षेत्र के माप का ही ऐरवत क्षेत्र है उसमें रक्ता रक्तवती नामक नदी प्रपात कुण्ड में गिरकर वैताढ्य को भेद कर लवणसमुद्र में गिरती है। अतः 3 मंदिर वहाँ भी है। अब हम पुनः इन शाश्वत मंदिरों का चार्ट दे रहे है।

क्षेत्र के नाम	शाश्वत जिनालय
1 भरत क्षेत्र	3
2 हिमवत क्षेत्र	3
3 हरिवर्ष क्षेत्र	3
4 रम्यक् क्षेत्र	3
5 ऐरण्यवत क्षेत्र	3
6 ऐरवत क्षेत्र	3
कुल	**18**

पर्वत के नाम	
1 लघु हिमवंत पर्वत	2
2 महा हिमवंत पर्वत	2
3 निषध पर्वत	2
4 नीलवंत पर्वत	2
5 रूक्मी पर्वत	2
6 शिखरी पर्वत	2
कुल	**12**

महाविदेह क्षेत्र को छोड़कर क्षेत्र और पर्वत के कुल 18 + 12 = 30 शाश्वत जिन मंदिर है।

अब हम आपको महाविदेह क्षेत्र के शाश्वत जिनालयों की जानकारी दे रहे है।

जम्बूद्वीप के मध्य में यह महाविदेह क्षेत्र स्थित है। देखिए चित्र में

महाविदेह क्षेत्र के मध्यभाग में 1,00,000 योजना ऊँचा 'मेरु' नामक पर्वत है जो कि सुवर्ण का है। उसके तीन गढ़ है। उन्हें काड भी कह सकते है। 'मंदर' नामक देव के नाम से उसका नाम मेरू पर्वत प्रसिद्ध हुआ है। उसकी तलेटी में भद्रशाल नामक वन है। उसी वन की भूमि को समतुला पृथ्वी भी कहते है। यह मेरू पर्वत 1000 योजन भूमि में है जिसे हम नींव भी कह सकते है। देखिये चित्र में

शाश्वत जिनालय

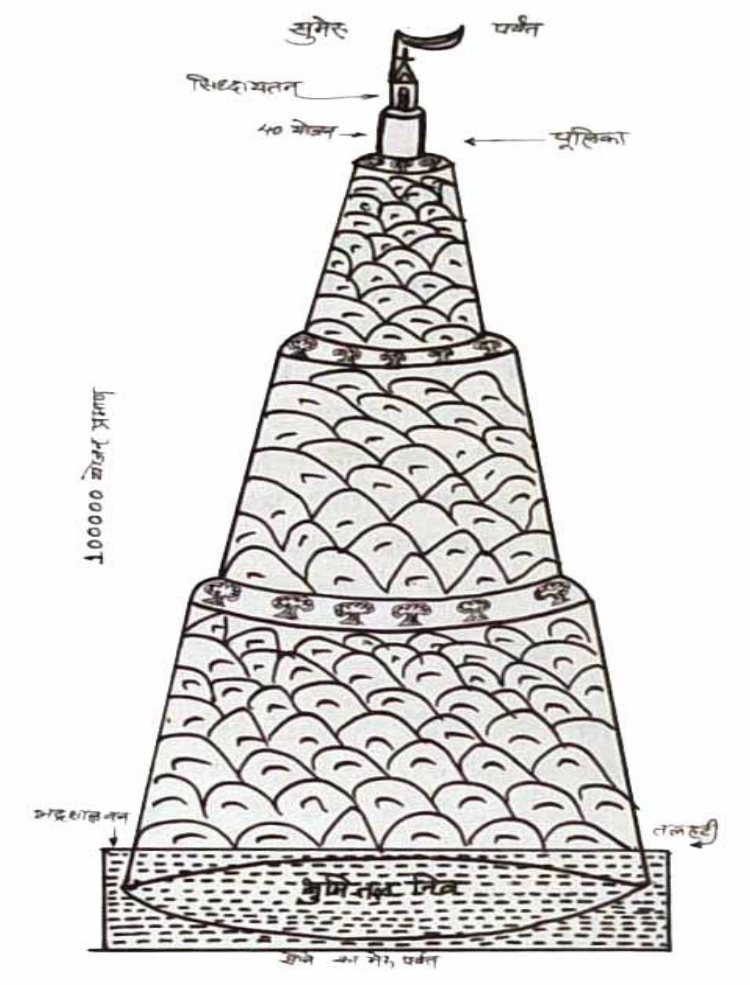

मेरू पर्वत की तलहटी भद्रशाल वन में चारों दिशा में एक–एक जिनालय है। अतः 4 जिनालय हुए।

भद्रशाल वन से 500 योजन उपर 'नदनवन' आता है, वहाँ भी चारों दिशा में एक–एक जिनालय है।

नंदनवन से 62500 योजन ऊपर 'सोमनस' नामक वन आता है, उसकी चारो दिशा में एक–एक जिनालय है।

सोमनस वन से 36000 योजन ऊपर 'पाँडुक' वन आता है, उसमें भी चारो दिशा में एक–एक जिनालय है।

पाँडुकवन में 40 योजन की चुलिका है जो कि 100000 योजन से अलग है, उसके ऊपर एक जिनालय है।

आप जानते ही हो कि मेरू पर्वत की तलहटी में सीता और सितोदा नदी पलटकर पूर्व पश्चिम महाविदेह क्षेत्र में जाती है। उस मोड पर नदी के दोनों तरफ दो–दो मंदिर है। अतः एक नदी के मोड पर चार मंदिर हुए और दोनों नदी के मोड पर आठ मंदिर हुए। देखिए चित्र

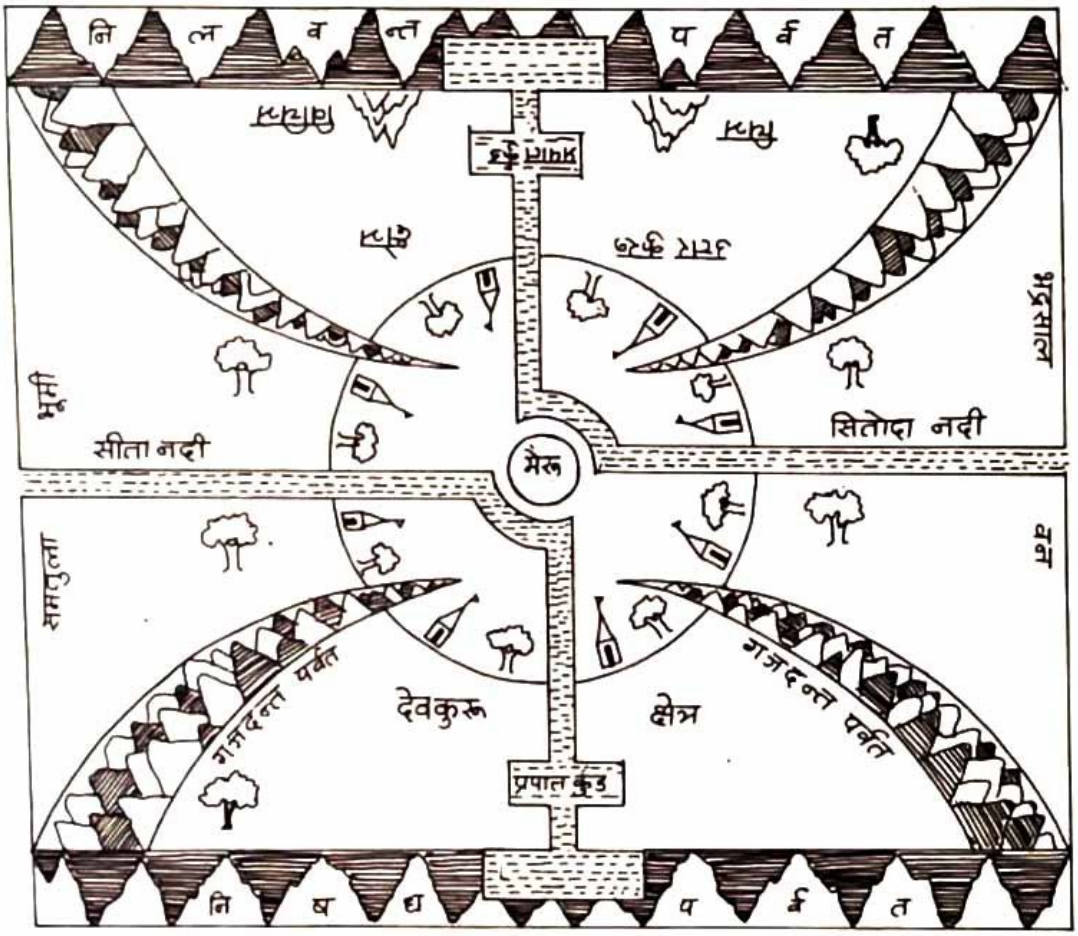

मेरू पर्वत के शाश्वत जिनालय का चार्ट

भद्रशाल वन	4
नंदन वन	4
सोमनस वन	4
पाँडुक वन	4

चूलिका 1

नदियों के मोड के 8

कुल 25 शाश्वत जिनालय

मेरू पर्वत के 25 शाश्वत जिनालय है।

अब हम आपको महाविदेह क्षेत्र में रहे देवकुरू, उत्तरकुरू, युगलिक क्षेत्र के शाश्वत जिनमंदिरों की जानकारी दे रहे है।

सर्वप्रथम आप चित्र देखिए

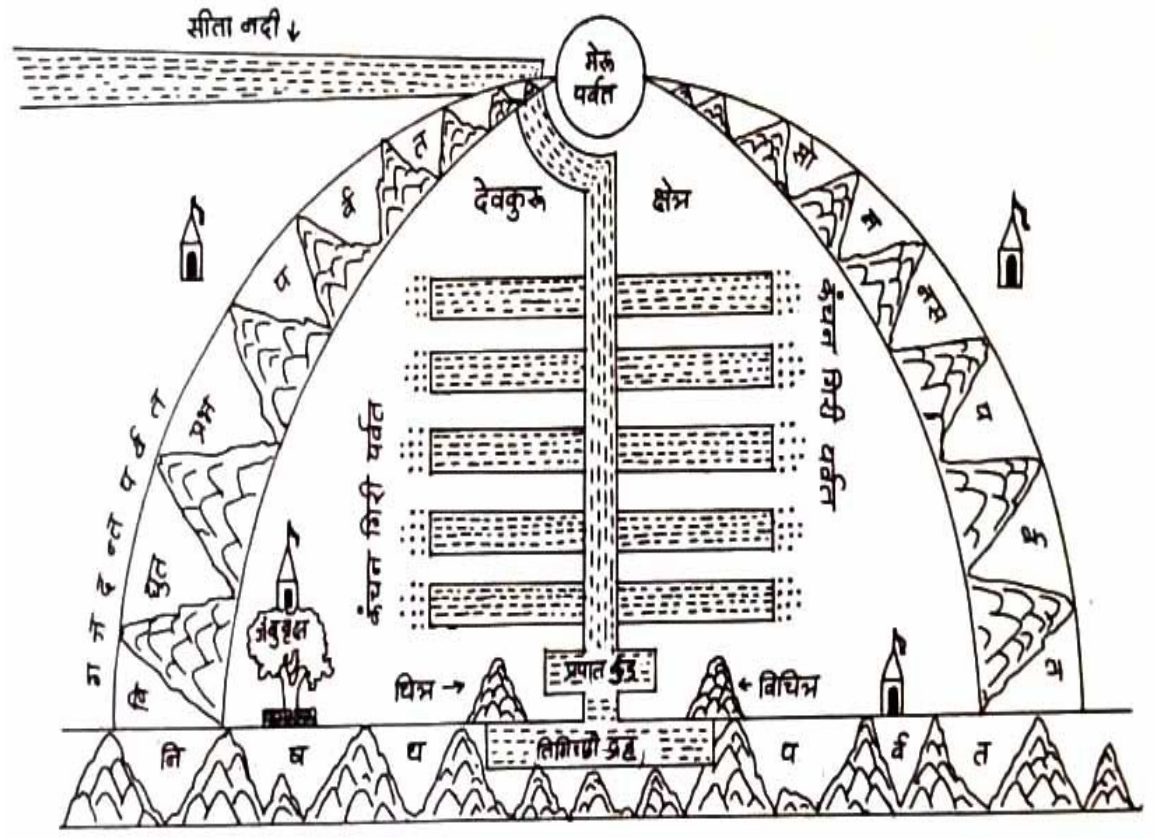

महाविदेह क्षेत्र के मध्य में सुवर्ण का मेरूपर्वत है। इस महाविदेह क्षेत्र की मर्यादा–सीमा दो पर्वत ने बाँधी है। उत्तर में नीलवंत पर्वत है तथा दक्षिण में निषध नामक पर्वत है। इन दोनों पर्वत से हाथी के दांत की आकृति के दोनों तरफ से दो–दो पर्वतनिकलते है जो कि देवकुरू और उत्तरकुरू

युगलिक क्षेत्र की मर्यादा बाँधते है। दक्षिण दिशा में देवकुरू क्षेत्र है तथा उत्तर में उत्तरकुरू क्षेत्र है। दोनों क्षेत्रों में एक समान स्थिति है मात्र नाम के ही फर्क है।

देवकुरू क्षेत्र में निषध, देवकुरू सुरप्रभ , सुलस एवं विद्युतप्रभ नामक पांच द्रह–सरोवर है। वे पांचों द्रह 1000 योजन लम्बे, 500 योजन चौड़े और 10 योजन गहरे है। इन पांचों द्रहों के मध्य में एक–एक जिन मंदिर है। अतः द्रह के पांच जिनालय हुए।

आपको पहले भी बताया था कि निषध पर्वत से सितोदा नदी निकल कर देवकुरू क्षेत्र में सितोदा प्रपात कुण्ड में गिरती है। वहाँ से आगे बढ़कर उन पांचों द्रहों को भेदकर मेरू पर्वत के पास से गजदन्त पर्वत को भेदकर महाविदेह क्षेत्र में होती हुई पश्चिम लवणसमुद्र में मिलती है। जहाँ नदी पर्वत से गिरती है उस सितोदा प्रपात कुण्ड में एक जिनालय है।

इस प्रपात कुण्ड के दोनों तरफ याने पूर्व तथा पश्चिम दिशा में चित्र एवं विचित्र नामक दो पर्वत है। जो कि 1000 योजन मूल में तथा एक योजन ऊपर से विस्तार वाले गोल है। उन दोनों पर एक–एक शाश्वत जिनालय है।

पांचो द्रहों की दोनों तरफ याने पूर्व–पश्चिम दिशा में एक–एक द्रह के पास एक–एक दिशा में 10–10 कंचनगिरि नामक पर्वत हे जो कि 100 योजन ऊँचे भूमि पर है जो कि घटते घटते शिखर के आकार के भूमिकूट जैसे है। फिर भी पूर्वाचार्यों ने इन्हें पर्वत के नाम से पुकारे है।

एक द्रह की एक तरफ 10 दोनों तरफ मिलकर 10 + 10 = 20 होते है। द्रह 5 है अतः 20 x 5 = 100 कंचनगिरि पर्वत है। उन पर भी एक–एक शाश्वत जिनालय है। अतः कंचनगिरि पर्वत पर 100 शाश्वत जिनमंदिर है।

देवकुरू क्षेत्र में पश्चिम दिशा में जम्बूद्वीप के अधिष्ठायक अनादृत देव का स्थान है। वहाँ पर 8 योजन ऊँचा 8 योजन विस्तार वाला तथा ०।। (आधा) योजन गहराई वाला जम्बू नामक 1 वृक्ष है। वैसे तो वह पृथ्वीकाय रत्न का बना हुआ है। किंतु उसका आकार वृक्ष का होने से उसे जम्बूवृक्ष कहते है। उस मूल जम्बू वृक्ष के गोलाकार में 8 अन्य जम्बूवृक्ष है। ताि उसके आसपास गोलाकार में 108 जम्बूवृक्ष है। अतः ये सभी जम्बूवृक्ष मिलकर 117 होते है। मूलवृक्ष की डाली पर अनादृत देव का भवन है। तथा 117 जम्बूवृक्षों पर एक–एक शाश्वत जिनालय है। अतः जम्बूवृक्ष के एक 117 जिनालय है।

देखिए चित्र

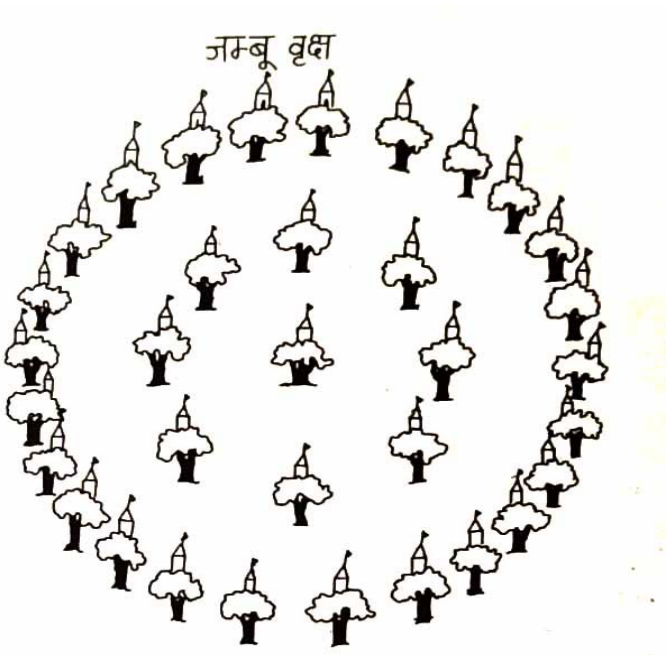

देवकुरू क्षेत्र की मर्यादा बांधने वाले दो गजदन्त पर्वत सोमनस एवं विद्युतप्रभ है। उन दोनों पर्वतों पर भी 1–1 शाश्वत जिनालय है।

ठीक इसी तरह 1 जिनालय देवकुरू क्षेत्र में भी शाश्वत है।

इस तरह सभी शाश्वत जिनालय मिलाकर 228 होते है।

देवकुरू के शाश्वत जिनालय का चार्ट

द्रह के	5	जिनालय
सीतोदा प्रपाककुण्ड	1	जिनालय
चित्र विचित्र पर्वत	2	जिनालय
कंचनगिरि पर्वत	100	जिनालय
जम्बूवृक्ष	117	जिनालय
गजदन्त पर्वत	2	जिनालय
देवकुरू पर्वत	1	जिनालय
कुल	**228**	**जिनालय**

जैसे पदार्थ एवं जिनालय देवकुरू क्षेत्र में है वैसे ही पदार्थ तथा जिनालय उत्तरकुरू क्षेत्र में

भी है मात्र उनके नाम में भेद है। नाम की जानकारी के लिए देखिए क्षेत्र समास ग्रंथ। अतः देवकुरू क्षेत्र के 228 जिनालय है ठीक वैसे ही उत्तरकुरु क्षेत्र में भी 228 जिनालय शाश्वत है।

जहाँ वर्तमान काल में चार तीर्थंकर परमात्मा सदेह विचरण कर रहे है उस महाविदेह क्षेत्र की जानकारी तथा वहाँ रहे शाश्वत जिनमंदिरों की जानकारी अब दी जा रही है।

सर्वप्रथम आप चित्र पर दृष्टिपात कीजिए –

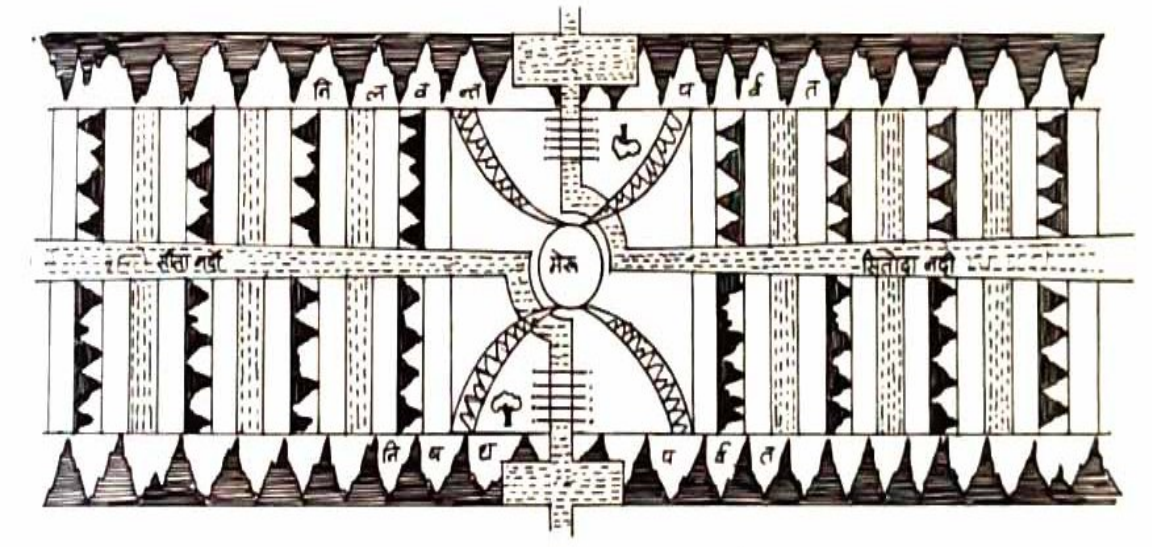

महाविदेह क्षेत्र – 32 विजय 16 पर्वत एवम् 12 अन्तर नदी

आप यह तो जानते है कि महाविदेह क्षेत्र को चार विभाग में बाँटा गया है। वह भी हम पुनः बता रहे है।

महाविदेह क्षेत्र के मध्य में मेरू पर्वत है उसके दक्षिण में देवकुरू एवं उत्तर में उत्तरकुरू युगलिक क्षेत्र है। अतः इसके कारण महाविदेह क्षेत्र. के दो भाग हो गए। पूर्व महाविदेह एवं पश्चिम महाविदेह आप यह भी जान ही गए है कि सीतोदा नदी ने पश्चिम महाविदेह को दो भागों में बाँटा है। दक्षिण पश्चिम महाविदेह एवं उत्तर पश्चिम महाविदेह ठीक उसी प्रकार सीता नदी ने पूर्व महाविदेह के दो भाग कर दिए है। दक्षिणपूर्व महाविदेह एवं उत्तरपूर्व महाविदेह है। अब तो आप समझ ही गए होंगे की महाविदेह इस तरह चार भागों में बट गया है।

अब हम मात्र उत्तर पूर्व महाविदेह का विचार कर रहे है। इस उत्तर पूर्व याने ईशान कोण वो महाविदेह मेंआठ विजय चार पर्वत एवं तीन अन्तर नदियाँ है। याने इस उत्तर पूर्व महाविदेह के पन्द्रह भाग होते है। विजय, पर्वत, नदी का क्रम निम्न है। पहले विजय, फिर पर्वत, फिर विजय, फिर नदी, फिर विजय, फिर पर्वत, फिर विजय, फिर नदी, फिर विजय, फिर पर्वत फिर विजय, फिर नदी, फिर विजय, फिर पर्वत एवं फिर विजय और अन्त में जगति और उसके बाद लवण समुद्र। अब उक्त विजय पर्वत नदी के चित्र से समझ लीजिए।

महाविदेह क्षेत्र की आठ विजय

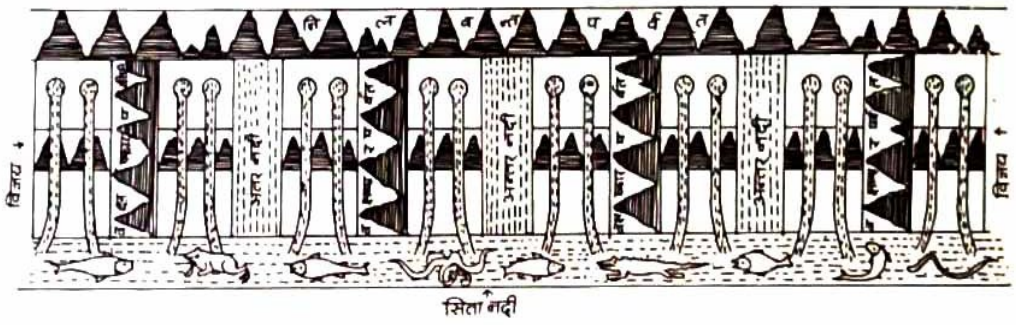

अब हम आपको विजय की जानकारी दे रहे है। उत्तर पूर्व महाविदेह की विजय के उपर नीलवंत पर्वत है तथा नीचे के भाग में सीता महानदी है। उस विजय के मध्य में वैताढ्य पर्वत है जो कि विजय को दो भागों में विभाजित करता है। नीलवंत पर्वत से दक्षिण दिशा में ऋषभकूट है उसके दोनों तरफ एक–एक कुण्ड है याने ऋषभकूण्ड के पश्चिम में सिन्धु प्रपात कुण्ड है तथा पूर्व में गंगा प्रपात कुण्ड है। उक्त दोनों कुण्ड से दो नदियां निकलती है याने सिन्धुप्रपात कुण्ड से सिन्धु नदी तथा गंगा प्रपातकुण्ड से गंगा नदी निकल कर दक्षिण दिशा की ओर बहती है। वे दोनों नदी वैताढ्य पर्वत को भेदकर विजय मं होती हुई सीता महानदी में मिल जाती है। इन दोनों नदियों के कारण विजय के 6 खण्ड हो जाते है। और ऐसा सभी विजय में है।

देखिए चित्र में

पुष्कलावती विजय

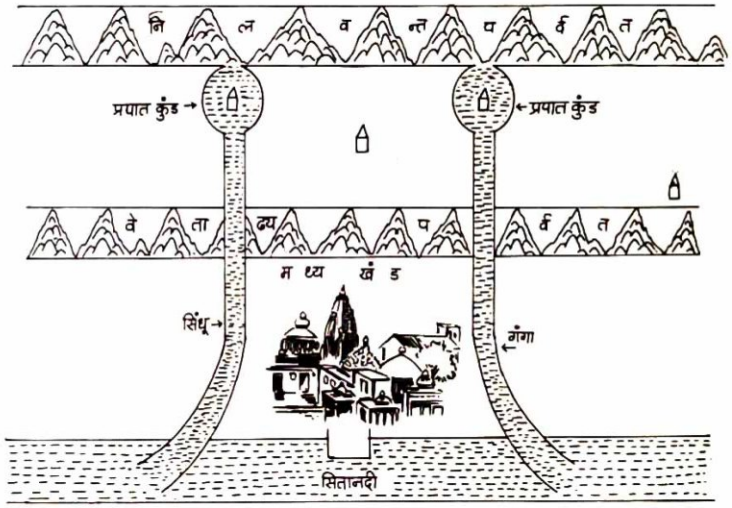

विजय में जो प्रपात कुण्ड है उन प्रपात कुण्ड में शाश्वत जिन चैत्य जिनालय है। सिन्धु प्रपात कुण्ड में एक जिनालय तथा एक जिनालय गंगा प्रपातकुण्ड में है तथा एक शाश्वत जिनालय दीर्घ वैताढ्य पर्वत के पूर्व के कोनेवाले शिखर पर है। अतः एक विजय में 3 जिनालय है।

उत्तर पूर्व महाविदेह में आठ विजय है अतः 8 x 3 = 24 शाश्वत जिन मन्दिर उत्तरपूर्व महाविदेह की विजयों में है। उत्तर पूर्व महाविदेह में आठवीं पुष्कलावती नामक विजय है। उस विजय के मध्यखण्ड में पुण्डरीकणी नगरी में जन्मे विहरमान जिनेश्वर श्री सीमन्धरस्वामी सदेह विचरण कर रहे है। नमन हो भगवान श्री सीमन्धरस्वामी जी को..... ।

विजय की मर्यादा बांधने वाले 4 वृक्षष्कार नामक पर्वत है तथा 3 अन्तर नदी है। 4 + 3 = 7 के आठ आतरों में विजय है। देखिए चित्र में विजय पर्वत नदी।

विजय की मर्यादा बांधनेवाले वृक्षष्कार पर्वत पर भी एक एक जिनालय है। उत्तर पूर्व महाविदेह में 4 वृक्षष्कार पर्वत है अतः 4 जिनालय वृक्षष्कार के है। अन्तर नदी में भी एक एक जिन मंदिर शाश्वत है अतः 3 नदी है उत्तर पूर्व महाविदेह में, अतः अन्तरनदी के 3 जिनालय है।

उत्तर पूर्व महाविदेह का चार्ट

8 x 3 = 24	जिनालय विजय के
4 x 1 = 4	जिनालय वृक्षष्कार पर्वत के
3 x 1 = 3	जिनालय अन्तर नदी के
31	कुल जिनालय उत्तर पूर्व महाविदेह के

सीता नदी के दक्षिण दिशा में तथा निषध पर्वत की उत्तर दिशा में दक्षिण पूर्व महाविदेह की आठ विजय चार वृक्षष्कार पर्वत एवं तीन अन्तर नदी है। यह सभी पूर्व की तरह ही समझ लेना है। मात्र प्रपातकुण्ड एवं नदियों के नाम में भेद हे वे निम्न समझना सिन्धु प्रपात कुण्ड के स्थान पर रक्ता प्रपात कुण्ड एवं गंगा प्रपात कुण्ड के स्थान पर रक्तवती प्रपात कुण्ड है। नदियों के स्थान पर भी मात्र नाम का ही भेद है। सिन्धु नदी के स्थान पर रक्ता नदी एवं गंगा नदी के स्थान पर रक्तवती नदी समझना है। नवमी विजय पूर्व दिशा के वनमुख के बाद आती है। नाम है उसका 'वत्स' इस विजय के मध्य खण्ड में देवदेवेन्द्रों से पूजित विहरमान भगवान श्री युगमधर स्वामी जी संदेह विचरण कर रहे है। नमन हो विरहमान भगवान को..... ।

हाँ तो आप समझ ही गए होंगे कि दक्षिण पूर्व महाविदेह में भी 31 शाश्वत जिनालय है।

सोलहवीं विजय के बाद वनमुख आता है फिर देवकुरू युगलिक क्षेत्र है तत्पश्चात् दक्षिण पश्चिम महाविदेह की शुरूआत हो जाती है। सत्रहवीं विजय से चौबीसवीं विजय तक की आठ विजय चार वृक्षष्कार पर्वत एवं तीन अन्तर नदी में भी मिलकर पूर्व की तरह ही 31 शाश्वत जिन मंदिर है।

चौबीस भी विजय में अगत–उद्धारक विहरमान भगवान श्री बाहुस्वामी जी सदेह विचर रहे हे नमन हो बाहुस्वामी जी भगवान कों

सत्रह को 24 विजय में गंगा सिन्धु नदी है तथा प्रपात कुण्ड एवं सिन्धु प्रपात कुण्ड है बाकी सभी एक समान है।

पच्चीसवीं विजय से बत्तीसवीं विजय का भाग उत्तर पश्चिम महाविदेह कहलाता है। पच्चीसवीं विजय में देव दानव ओर मानव के तारणहार विहरमान श्री सुबाहुस्वामी जी सदेह विचर रहे है। शतशः नमन विहरमान श्री सुबाहुस्वामीजी को।

उत्तर पश्चिम महाविदेह में आठों विजय में रक्ता एवं रक्तवती नदी बहती है तथा प्रपातकुण्ड भी रक्ता प्रपापकुण्ड एवं रक्तवती प्रपातकुण्ड है बाकी सब वहीं नाम ठाम वैसे ही है जो की अन्य विजय मेकं होते है अतः उत्तर पश्चिम महाविदेह के भी 31 जिन मंदिर शाश्वत है।

महाविदेह क्षेत्र के जिनमंदिर का चार्ट

32 x 3 = 96 जिन मंदिर विजय के

16 x 1 = 16 जिन मंदिर वक्षष्कार पर्वत के

12 x 1 = 12 जिन मंदिर अन्तर नदी के

124 जिन मंदिर महाविदेह क्षेत्र के

अथवा

31 जिनमंदिर उत्तर पूर्व महाविदेह के

31 जिनमंदिर दक्षिण पूर्व महाविदेह के

31 जिनमंदिर दक्षिण पश्चिम महाविदेह के

31 जिनमंदिर उत्तर पश्चिम महाविदेह के

124 जिनमंदिर महाविदेह क्षेत्र के

अब हम आपको जम्बूद्वीप के शाश्वत जिनमंदिरों का चित्र बात रहे है।

30 जिनमंदिर भरत, ऐरवत, हिमवंत, हरिवर्ष, रम्यक, ऐरण्यवंत एवं वर्षधर पर्वत के

25 जिनमंदिर मेरू पर्वत के

228 जिनमंदिर देवकुरू क्षेत्र के

228 जिनमंदिर उत्तर कुरू क्षेत्र के

124 जिनमंदिर महाविदेह क्षेत्र के

635 जम्बूद्वीप के कुल शाश्वत जिनमंदिर है।

जम्बूद्वीप के चारोतरफ दो लाख योजन का लवण समुद्र है। उसके बाद चार लाख योजन प्रमाण का धातकीखण्ड नामक द्वीप है। उसमें जम्बद्वीप के सभी पदार्थ स्थान व्यवस्था वैसी ही है मात्र भेद इतना ही है कि वे दुगने है। दो महाविदेह, दो भरत क्षेत्र, दो ऐरवत क्षेत्र है। अतः 635 + 635 = 1270 जिनमंदिर है। धातकीखण्ड नामक द्वीप को दो भाग में बाँटने वाले दो पर्वत है जिन्हें ईशुकार पर्वत कहते है। उन दोनों पर भी एक एक जिन मंदिर है। अतः 1270 + 2 = 1272 जिनालय है धातकीखण्ड द्वीप में।

धातकी खण्ड द्वीप को घेरकर आठ लाख योजन प्रमाण का कलोदधि समुद्र है। उसके बाद आता है पुष्करवर द्वीप उसका प्रमाण है सोलह लाख योजन। किंतु उसके मध्य में मानुषोत्तर पर्वत है जो कि पुष्करवर द्वीप को दो भाग में विभाजित कतरता है। अतः अपनी तरफ के भाग को अर्धपुष्कारार्धद्वीप कहा जाता है उसमें भी सभी पदार्थ धातकी खण्ड द्वीप जितने है अत5 1272 जिनमंदिर है।

अभी हमने जिस मानुषोत्तर पर्वत की बात कही थी उसके चारों दिशा में एक एक जिनमंदिर है अतः मानुषोत्तर पर्वत पर 4 जिनालय शाश्वत है। अतः 1272 + 4 = 1276

जम्बूद्वीप से पन्द्रहवाँ द्वीप नदीश्वर द्वीप है। आप सभी ने इस द्वीप का नाम सुना ही होगा। यह नंदीश्वर द्वीप तीर्थ है। यहाँ देव देवेन्द्र एवं विद्याधर मनुष्य अष्टाह्निका महोत्सव करते है। उस द्वीप पर 52 जिनमंदिर शाश्वत है। उनकी रचना इस तरह है।

चारों दिशा में 13 – 13 जिनालय है अतः 13 x 4 = 52 होते हैं। प्रत्येक दिशा में याने पूर्व दक्षिण पश्चिम तथा उत्तर दिशा मे उक्त 52 जिनमंदिर है।

प्रत्येक दिशा में 13 जिनालय इस तरह है। बीच मं अजनगिरि नामक पर्वत है। उसके चारों दिशा मं चार बावडी है उनमें प्याले के आकार का दधिमुख पर्वत है तथा विदिशा में आठ रतिकर पर्वत है।

अजनगिरि – 1

दधिमुख – 4

रतिकर पर्वत 8

कुल 13 पर्वत है।

इन सभी पर्वतों पर एक एक जिनालय है और यही रचना चारों दिशा में है अतः 13 x 4 = 52 जिनालय नंदीश्वर द्वीप में है।

नंदीश्वर द्वीप में सोधर्म एवं ईशान इन्द्र की आठ पट्टरानियों की राजधानी है। सौधर्म पट्टरानियों एवं इशान पट्टरानियों की मिलकर 16 राजधानी है उन सभी में भी एक–एक जिन मन्दिर है। अतः सोलह राजधानी में 16 जिनालय है। अतः सभी मिलाकर नंदीश्वर द्वीप के 52 + 16 = 68 जिनमंदिर है।

नंदीश्वर द्वीप से आगे रूचक द्वीप एवं कुण्डल नामक द्वीप है। यहाँ दिक् कुमारिकाएँ रहती है। वे तीर्थंकर भगवन्त के जन्म होने पर सूति कर्म करने आती है। उन दोनों द्वीप पर भी 4 – 4 शाश्वत जिनालय है।

अब हम आपको तिर्च्छालोक के जिनालय का चार्ट बता रहे है।

635	शाश्वत जिनमंदिर जम्बूद्वीप में
1272	शाश्वत जिनमंदिर धातकी खण्ड में
1276	शाश्वत जिनमंदिर पुष्करार्ध द्वीप में
52	शाश्वत जिनमंदिर नंदीश्वर द्वीप में
16	शाश्वत जिनमंदिर राजधानी में
4	शाश्वत जिनमंदिर रूचक द्वीप में
4	शाश्वत जिनमंदिर कुण्डल द्वीप में
3259	तिर्च्छालोक के कुल शाश्वत जिनमंदिर

तिर्च्छालोक में 3259 जिनालय शाश्वत है। उन सभी जिनालय में बडी से बड़ी प्रतिमाएँ 500 धनुष्य की है। छोटी भी हो सकती है।

इन जिनालयों में से नंदीश्वर के 52 एवं 4 रूचक द्वीप एवं 4 कुण्डल द्वीप के मिलाकर 60 जिनालय के चारों द्वार खुले है। 3259 - 60 = 3199 जिनालय के तीन द्वार खुले है तथा पश्चिम दिशा का द्वार सदा ही बन्द रहता है। अतः 108 जिन प्रतिमा मूल गभारे की तथा तीन द्वार पर चौमुखी प्रतिमा होने से 12 प्रतिमा द्वार की मिलकर 108 + 12 = 120 प्रतिमाएँ है। तथा 60 जिनालय में 108 प्रतिमाएं मूल गभारे में तथा चारों द्वार खुले होने से द्वार के चौमुखजी की 16 प्रतिमा मिलाकर 108 + 16 = 124 प्रतिमा जी की है।

जिनालय एवं प्रतिमा जी का चित्र

3199	x	120	=	383880	प्रतिमाजी
60	x	124	=	7440	प्रतिमाजी
3259			**=**	**3,91320**	**प्रतिमाजी**

बत्रीसें ने ओगण साठ तिर्च्छा लोक मां चैत्य नो पाठ।
त्रण लाख एकाणु हजार त्रणसे बीस ते बिम्ब जूहार।।

तिर्च्छालोक में रही उपरोक्त सभी शाश्वती जिन प्रतिमाओं को मेरा भाव पूर्वक नमस्कार.....।

अब हम आपको ऊर्ध्व–अधो और तिर्च्छा इन तीनों लोक के जिनालय एवं प्रतिमाजी की संख्या बता रहे हैं।

तीन लोक के जिनालय तीन लोक की प्रतिमाएँ

8497023	ऊर्ध्वलोक	1529444760
77200000	अधोलोक	73896000000
3259	तिर्च्छालोक	+ 391320
85,70,0282	**तीन लोक में कुल**	**15,42,58,36080**

जग चिन्तामणी सूत्र की गाथा नं. 4 में शाश्वत जिन मंदिरों की संख्या का वर्णन किया गया है। वह इस तरह है।

सत्ताणवइसहस्सा लक्खा, छप्पन अट्ठ कोडिओं।
बत्तीसय बासिआइं तिअलोए चेइअ वंदे।। 4।।

97000	सत्ताणवइ सहस्सा
5600000	लक्खा छप्पन
80000000	अट्ठकोडिओ
3282	बत्तीसय बासिआइ
85700282	**तिअलोए चेइअ वंदे**

जग चिंतामणि सूत्र की पांचवी गाथा में प्रतिमाओं की संख्या बताई है वह निम्न है।

15000000000	पनरस कोडी सयाई
420000000	कोडी बायल
5800000	लक्ख अडवन्ना
36000	छतीस सहस्स
80	असिई
15,42,58,36,080	**सासय बिम्बाई पाणमामि।।5।।**

उपरोक्त तीनों लोक के शाश्वत जिनालय एवं शाश्वत प्रतिमाओं को मैं द्रव्य एवं भाव पूर्वक नमस्कार करता हूँ।

उपरान्त तीनों लोकों में निम्न देवताओं का निवास है।

25 भवनपति– अधोलोक

26 बाणव्यनीट 10 ज्योतिषी मध्य

3	किंतिवशी
12	देवलोक
9	लोकान्तिक
9	ग्रेवेयक
5	अनुतर विमान

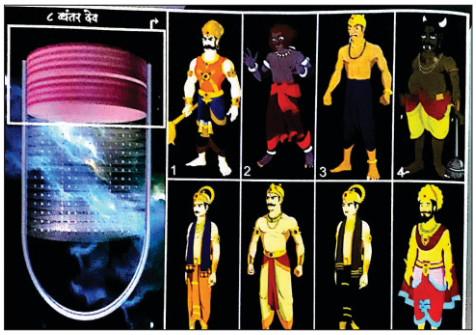

99 x 99 = 198

पर्याप्ता अपर्याप्ता

इन देवी–देवताओं के चित्र व देवताओं के विवान का चित्र निम्न प्रकार से है।

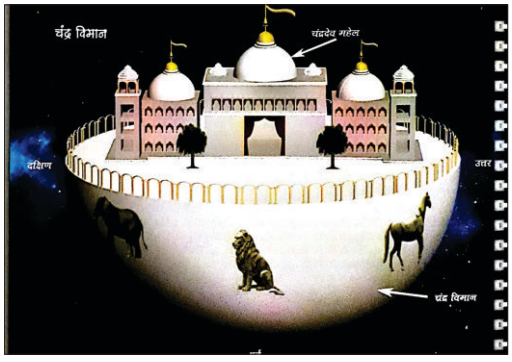

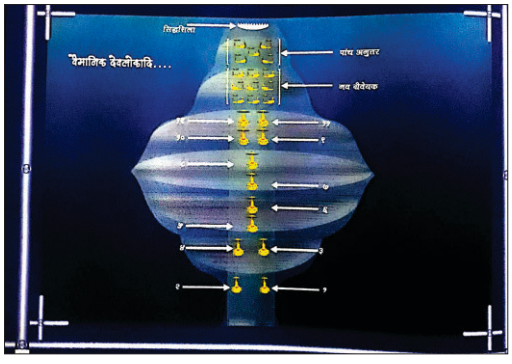

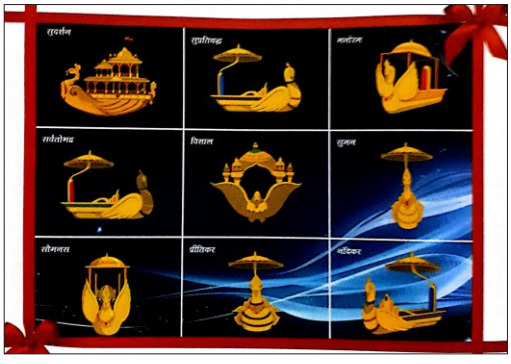

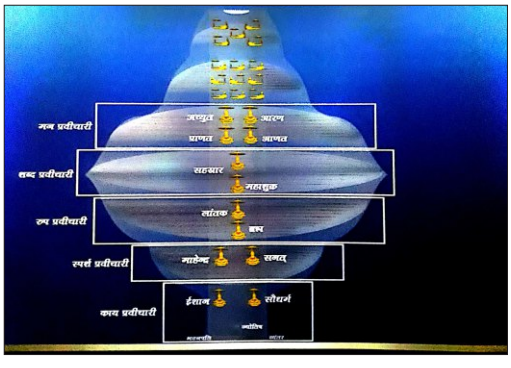

ऊर्ध्वलोक में जिनमंदिर

ऊर्ध्वलोक में वैमानिक देवों के रहने हेतु विमान है। सर्वप्रथम बारह देवलोक, नवग्रैवेयक एवं पांच अनुत्तर विमान ऊर्ध्वलोक में है। एक एक देवलोक में सैंकड़ों, हजारों लाखों विमान है। जिनमें अच्छे, कर्म के प्रभाव से पुण्य को भोगने वाले देवता रहते है। देवलोक के प्रत्येक विमान में एक–एक जिन मंदिर है। एक एक जिनमंदिर में सभा सहित 180 प्रतिमाएँ है तथा जहाँ सभा नहीं है वहां 120 जिन प्रतिमाऐं है।

प्रथम देवलोक 32,00,000 विमान है। उन बत्तीस लाख विमानों का स्वामी सोधर्म इन्द्र है तथा देवलोक का नाम भी सोधर्म देवलोक है। अतः पहले देवलोक में 32,00,000 जिन मंदिर है। ठीक उसी तरह दूसरा ईशान देवलोक है वहाँ ईशान इन्द्र राज्य करता है। उसके 28,00,000 विमान है। अतः अट्ठा–वीश लाख जिन मंदिर दूसरे देवलोक में है। तीसरा देवलोक है सनतकुमार। वहाँ 12,00,000 विमान का अधिपति सनतकुमार नामक इन्द्र राज्य करता है। अतः तीसरे देवलोक में बारह लाख जिनमंदिर है। चौथा देवलोक माहेन्द्र कहलाता है।

वहाँ के देवेन्द्र का नाम है माहेन्द्र इन्द्र। उसके अधीन 8,00,000 विमान है। अतः चौथे देवलोक में आठ लाख जिनमंदिर है। पांचवाँ देवलोक ब्रह्मलोक के नाम से पहचाना जाता है। इस पांचवे देवलोक के राजा का नाम है ब्रह्मलोक इन्द्र। यहां 4,00,000 विमान है। अतः पांचवे देवलोक में चार लाख जिनालय है। छट्ठा कल्प है लातक देवलोक। यहां लातक नामक इन्द्र का आधिपत्य है। यहाँ 50,000 विमान है। अतः छट्ठे देवलोक में पच्चास हजार जिन मंदिर है।

सातवें स्वर्ग का नाम है महाशुक्र। यहाँ 40,000 विमान है जिनका स्वामी हे महाशुक्र नामक इन्द्र। अतः सातवें देवलोक में चालीस हजार जिनालय है। आठवें देवलोक का स्वामी है सहस्त्रसार। यहाँ मात्र 6,000 देव विमान है। अतः आठवें स्वर्ग में छः हजार जिनमंदिर है। नवमें एवं दसवें स्वर्ग का स्वामी एक ही इन्द्र है। जिनके मात्र 400 ही विमान है। अतः नवमें आनत एवं दसवें प्राणत नामक देवलोक के मिलकर चारसों जिनमंदिर है।

आरण एवं अच्युत नामक ग्यारहवें एवं बारहवें देवलोक के राजाधिराज इन्द्र है अच्युतेन्द्र। इनके आधीन 300 विमान है। जिनमें तीन सौ जिनालय है। अतः बारह देवलोक में कुल जिनमंदिरों की संख्या 84,96,700 होती है। यहां से उपर नवग्रैवेयक के विमान आते है। जहाँ कोई इन्द्र नहीं होता। वहां सभी देव इन्द्र के समान होते है। नवग्रैवेयक के 318 विमान है। अतः नवग्रैवेयक के तीनसौ अट्ठारह जिनालय है। और फिर आते हे पांच अनुत्तर विमान। यहाँ भी कोई राजा प्रजा की व्यवस्था नहीं है। अतः वहाँ के सभी देवता अहमेन्द्र कहलाते है। अनुत्तर के पांच विमान है। जिनमें जिनमंदिर है। अतः अनुत्तर के पांच जिनालय हुए। ऊर्ध्वलोक में सभी मिलाकर जिनमंदिरों की संख्या चौरासीलाख सीतयाणु हजार तेवीस है।

बारह देवलोक में राजा और प्रजा का व्यवहार है। वहाँ मृत्युलोक की तरह राजा का बन्धन

है, आचार है, कल्प है। अतः बारह देवलोक को कल्पोपन्न भी कहते है। तथा नवग्रैवेयक और पांच अनुत्तर में सभी देवता अहम् इन्द्र याने स्वयं इन्द्र होते है। अतः वहां राजा प्रजा का कल्प आचार नहीं होने से उन्हें कल्पातीत कहा जाता है।

हाँ, तो यह हो गई ऊर्ध्व लोक के जिनमंदिरों की बात अब हम आपको यह बता रहे है वे जिनालय कितने लम्बे चौड़े और कैसे है ? साथ ही उन जिन मंदिरों में कितनी प्रतिमाएँ है।

जिनालय का माप एवं स्थिति

देवलोक में रहे शाश्वत जिनालयों की लम्बाई सो योजन होती है। बहोत्तर योजन चौड़ाई एवं पचास योजन की ऊँचाई होती है। प्रत्येक जिनालय के चारों दिशा में चार द्वार होते है। उनमें तीन द्वार खुले रहते है एवं एक द्वार बन्द ही रहता है।

शाश्वत जिन प्रतिमाएँ

जिनालय के मूल गभारे में चौमुखजी होते है। उनमें प्रत्येक दिशा में 27–27 प्रतिमाएँ होती है। याने पूर्व में 27, पश्चिम में 27, उत्तर में 27, दक्षिण में 27, शाश्वती प्रतिमाएँ होती है। अतः मूल गभारे में 27 x 4 = 108 प्रतिमाजी होते है। हम आपकों पूर्व में बतला चुके है कि प्रत्येक शाश्वत जिनालय में चार द्वार होते है उनमें पश्चिम दिशा का द्वार सदाकाल ही बन्द रहता है। अब शेष बचे तीन द्वार। पूर्व, उत्तर एवं दक्षिण के द्वार पर चौमुखजी है। अतः एक द्वार पर 4 प्रतिमाजी है। और तीन द्वार की मिलकर ये ये 4 x 3 = 12 होती है। उपरोक्त 108 + 12 = 120 प्रतिमाजी जिनालय में होती है।

प्रतिमाजी के नाम भी शाश्वत ही होते है, ऋषभ, चन्द्रानन, वारिषेण और वर्धमान नामक जिनेश्वरों के नाम की ही शाश्वत प्रतिमाजी प्रत्येक जिनालय में होती है।

ऊर्ध्वलोक में जहाँ कल्पोपन्न देवलोक है याने कि 12 देवलोक में इन्द्र ओर देव का व्यवहार है। जहाँ इन्द्र है वहां प्रत्येक जगह पांच सभा होती है।

सभाओं के नाम

1)	मज्जन सभा	–	राज्याभिषेक होता है।
2)	अलंकार सभा	–	श्रृंगार होता है।
3)	ज्ञान सभा	–	देवोत्पन्न होता है।
4)	सिद्धायतन सभा	–	न्याय होता है।
5)	व्यवसाय सभा	–	तत्त्वज्ञान की पुस्तके वांचते है।

प्रत्येक सभा में चारों दिशा में चार द्वार है। उनमें पश्चिम दिशा का द्वार सदा बंद रहता है। और खुले तीन द्वार पर एक एक चौमुखजी विराजमान है। अतः एक सभा में 4 x 3 = 12 जिनप्रतिमाएँ है। पाँच सभा है अतः 12 x 5 = 60 जिन प्रतिमाएँ है। अब देवलोक की 120 + 60 =

180 प्रतिमाएँ सभा सहित है। सकलतीर्थ में कहा है, "**एक सो एंसी बिम्ब प्रमाण सभा सहित एक चैत्ये जाण**"

हाँ तो अब आप समझ ही गये होंगे कि एक जिनालय में जो कि देवलोक में है और जिन देवलोक में इन्द्र है वहाँ पर 180 प्रतिमाएँ है। अतः अब आप ही बताईये कि पहले देवलोक में सभी जिनालय में मिलाकर कुल कितनी प्रतिमाएँ है।

अच्छा, मैं ही बता देता हूँ आपको एक जिनालय में 180 प्रतिमा है। जितने जिनालय है उनमें 180 का गुणाकार कर दो। बस, जिनालय में रही प्रतिमाओं की संख्या निकल जाएगी।

अब यहाँ ऊर्ध्वलोक के जिनालय एवं प्रतिमा का चार्टबनाकर आपको समझा रहे है।

		जिनालय		प्रतिमा	कुल प्रतिमा
1	सौधर्म देवलोक	3200000	x	180 =	57,60,00,000
2	ईशान देवलोक	2800000	x	180 =	50,40,00,000
3	सनन्तकुमार देवलोक	1200000	x	180 =	21,60,00,000
4	माहेन्द्र देवलोक	800000	x	180 =	14,40,00,000
5	ब्रह्मलोक देवलोक	400000	x	180 =	7,20,00,000
6	लान्तक देवलोक	50000	x	180 =	90,00,000
7	महाशुक्र देवलोक	40000	x	180 =	72,00,000
8	सहस्त्रसार देवलोक	6000	x	180 =	10,80,000
9	आनत 10 प्राणत देवलोक	400	x	180 =	72,000
11	आरण 12 अच्युत देवलोक	300	x	180 =	54,000
	ग्रैवेयक (कल्पातीत)	318	x	120 =	38,160
	अनुत्तर देवलोक	5	x	120 =	600
		84,97,023			**15,294,44,760**

उक्त चार्ट के अनुसार ऊर्ध्वलोक में कुल मिलाकर 84,97,023 शाश्वत जिनमंदिर है तथा प्रतिमाओं की संख्या है 1,52,94,44,760।

व्यन्तर एवं ज्योतिष्क निकाय में असंख्य जिनालय है। अतः ऊर्ध्वलोक एवं व्यन्तर ओर ज्योतिष्क में स्थित सभी जिनेश्वर देव की शाश्वत प्रतिमाजी को द्रव्य एवं भावपूर्वक नमस्कार ही करते है। अब हम आपको अधोलोक कि जिसे पालातलोक भी कहते है। उस पाताललोक में रहे जिनालयों की जानकारी दे रहे है।

अधोलोक में जिनमंदिर

तिर्च्छालोक से नीचे नरक पृथ्वियाँ है उसमें क्रम से उंधी छत्री के आकार की सात नरक पृथ्वी है। सर्व प्रथम रत्नप्रभा नारकी है। उसके उपर भवनपति नामक देव के रहने के लिये भवन है। भवनपतिदेव दस प्रकार के है। उनके प्रत्येक के दो–दो इन्द्र है। याने दस भवनपति के बीस इन्द्र है। उन इन्दों का साम्राज्य दो भागों में बंटा हुआ है। क्योंकि देवों के भवन उत्तर दिशा एवं दक्षिण दिशा में है। प्रत्येक भवनपति के भवन दो दिशा में है। जिन्हें उत्तरार्ध भवनपति एवं दक्षिणार्थ भवनपति कहते है। उत्तरार्ध भवनों का स्वामी उत्तरार्ध इन्द्र रहता है तथा दक्षिणार्ध भवनों का मालिक दक्षिणार्थ इन्द्र कहलाता है।

वहाँ के प्रत्येक भवनों में पांच सभा भी होती है। तथा प्रत्येक भवन में शाश्वत जिनालय है। जिनमें पूर्व की तरह ही सभा सहित 180 जिन प्रतिमाएँ है। अब हम आपको दस भवनपति के दक्षिणार्ध एवं उत्तरार्ध भवनों की संख्या बात रहे हे। बस उतने ही शाश्वत जिनालय भी है।

दक्षिणार्ध	भवन	इन्द्र के नाम	भवनपति के नाम	इन्द्रउत्तरार्ध भवन
3400000	चमरेन्द्र	1 असुरकुमार	बलीन्द्र	3000000
4400000	धरणेन्द्र	2 नागकुमार	भूतानेन्द्र	4000000
3800000	वेणुदेवन्द्र	3 सुवर्णकुमार	वेणुदालीन्द्र	3400000
4000000	हरिकान्तेन्द्र	4 विद्युतकुमार	हरिसहेन्द्र	3600000
4000000	अग्निशिखेन्द्र	5 अग्निकुमार	अग्निभाणवेन्द्र	3600000
4000000	पूणेन्द्र	6 दिपकुमार	विशिष्टेन्द्र	3600000
4000000	जलकान्तेन्द्र	7 उदधिकुमार	जलप्रभेन्द्र	3600000
4000000	अमितयतीन्द्र	8 दिक्कुमार	अमितवातनेन्द्र	3600000
5000000	वेलम्बेन्द्र	9 वातकुमार	प्रभजनेन्द्र	4600000
4000000	घोणेन्द्र	10 स्तिनितकुमार	महाघोषेन्द्र	3600000
4,06,00,000		**कुल भवनपति**	**3,66,00,000**	

चार करोड़ छः लाख भवन दक्षिणार्थ दस भवनपति के है तथा उत्तरार्ध दस भवनपति के तीन करोड़ छासठ लाख भवन है। 40600000 + 36600000 = 7,72,00,000 भवन होते है।

उन सभी में एक एक शाश्वत जिन मंदिर है। प्रत्येक भवन में पांच पांच सभाएँ भी है अतः प्रत्येक जिनालय में 180 प्रतिमाजी है।

7,72,00,000 x 180 = 13,89,60,00,000 जिन प्रतिमा अधोलोक में है। उन सभी शाश्वत जिन प्रतिमाओं को मेरा द्रव्य एवं भावपूर्वक नमस्कार हो।

अब हम आपको तिर्च्छालोक के जिन चैत्यों की जानकारी दे रहे है। आप रोज यदि सुबह का प्रतिक्रमण करते होंगे तो आपको ख्याल होगा की सकल तीर्थ नामक सूत्र द्वारा आप तिर्च्छालोक के शाश्वत तीर्थों की वंदना करते है।

बत्तीसशें ने ओगणसाठा तिर्च्छालोक मां चैत्य नो पाठ।

.हैं। इन्हें कल्प भी कहते हैं कारण इन स्वर्ग के देवों में दश प्रकार के कल्प अर्थात भेद होते हैं, जिनका वर्णन आगे करेंगे ।

नव ग्रैवियक के नाम ??

सुदर्शन, अमोध, सुप्रबुद्ध, यशोधर, सुभद्र, ग्रैवियक, सुमनस, सोमनस और प्रीतिंकर इस प्रकार यें क्रम से नव ग्रैवियक एक एक के ऊपर हैं जिन्हें तीन अधः, तीन मध्य और तीन उर्ध्व ग्रैवियक कहते हैं।

नव अनुदिश के नाम ??

आदित्य, अर्ची, अर्चिमालिनी, वैर, वैरोचन, सोम, सोमरूप, अर्क, स्फाटिक इस प्रकार नव अनुदिश विमान एक ही पटल में स्थित हैं इनमें चार श्रेणिबद्ध हैं जो चारों दिशाओं में हैं और चार प्रकीर्णक हैं जो चार विदिशाओं में हैं, और एक इन्द्रक है जो कि सबके बीच में हैं।

पांच अनुत्तर विमान निम्न प्रकार हैं :

विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि।

चार चारों दिशाओं में और सबके बीच में सबसे ऊँचा सर्वार्थसिद्धि विमान हैं। यह सर्वार्थसिद्धि का विमान और सातवें नरक का इन्द्रक बिल और जम्बूद्वीप यें तीनों बराबर बराबर एक लक्ष या लाख योजन के विस्तार के हैं।

सर्वार्थसिद्धि के विमान से बारह योजन ऊँची ईषत्प्राग्भार नाम की आठवीं पृथ्वी है, उसके बीच में पैंतालिस लाख योजन के विस्तार में सिद्ध शिला है, उस सिद्ध शिला पर अनंत सिद्ध भगवान विराजमान है। इस प्रकार उर्ध्व लोक की अत्यंत महिमा हैं उस उर्ध्व लोक में देव, इन्द्र और अहमिन्द्र रहते हैं, वहाँ के पटल और विमान वगैरह का वर्णन यहाँ करता हूं।

उर्ध्व लोक में त्रेसठ 63 पटल हैं, नव ग्रैवियक में नव पटल हैं।

अब देवों के विमानों का वर्णन सुनिए।

स्वर्ग विमान वर्णन ?

स्वर्गों में विमान होते हैं इसीलिए स्वर्ग के देव वैमानिक कहलाते हैं यें विमान देवों को बहुत आराम और सुख देने वाले इन्द्रक, श्रेणिबद्ध और प्रकीर्णक कहे जाते हैं।

कुल विमान चौरासी लाख सत्तानवें हजार तेईस की संख्या में हैं। प्रत्येक विमान में एक एक जिनालय है, इनकी संख्या भी विमानों के समान हैं।

पहले स्वर्ग में बत्तीस लाख विमान, दूसरे स्वर्ग में अठाईस लाख, तीसरे स्वर्ग में बारह लाख,

चौथे स्वर्ग में आठ लाख, पांचवें दृ छठवें स्वर्ग में चार लाख, सातवें – आठवें स्वर्ग में पचास हजार, नवमें – दशवें स्वर्ग में चालीस हजार, ग्याहरवें दृ बारहवें स्वर्ग में, तेरहवें स्वर्ग से सोलहवें स्वर्ग तक सात सौ विमान हैं। तीन अधः ग्रैवियक में एक सौ ग्यारह विमान, तीन मध्य ग्रैवियक में एक सौ सात विमान और तीन उर्ध्व ग्रैवियक में इक्यावन विमान हैं। नव अनुदिश में नव विमान और पांच अनुत्तर में पांच विमान हैं इस प्रकार उर्ध्व लोक में स्वर्ग के विमानों की संख्या हैं जिनमें देवगण रहते हैं।

विमानों का विशेष वर्णन

पटल के बीच में विमान इन्द्रक कहा जाता हैं और चारों दिशाओं और विदिशाओं में जो विमान होते हैं वें श्रेणीबद्ध कहलाते हैं, और दिशाओं और विदिशाओं के बीच अन्तराल में जो विमान स्थित हैं उन्हें प्रकीर्णक कहते हैं।

देव विमानों में सोने के रत्नमयी महल होते हैं उन महलों में मरकतमणि और इन्द्रनीलमणि के तोरणों से युक्त दरवाजे हैं। यें विमान सात, आठ, नव, दश भूमियों से युक्त होते हैं, तथा विमानों में बड़ी बड़ी नाट्यशालाएं होती है। विमानों में आसनशाला, क्रीड़ाशाला, मणिमय शय्याएं, निर्मल एवं उत्तम दीपों व विविध पुष्पों से परिपूर्ण महल होते हैं।

सौधर्म आदि स्वर्गों के मुख्य मुख्य विमानों के कुछ नाम निम्न प्रकार हैं ऋतु, सौमनस, श्रीवृक्ष, सर्वतोभद्र, प्रीतिकंर, रम्यक, लक्ष्मी, मान्दिति नाम है। यें विमान लाख लाख योजन के विस्तार के होते हैं। इन देव विमानों के बीच में इन्द्र का रत्नमयी महल होता है, इस महल में मणिमय सिंहासन होता है, उस पर इन्द्र बैठता हैं। देव और देवियाँ इन्द्र की नित्य सेवा करती हैं सौधर्म और ईशान इन्द्र के कुल एक लाख और साठ हजार देवियाँ और आठ आठ अग्रदेवियाँ होती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक इन्द्र के एक एक प्रतीन्द्र और अन्य देवगण इन्द्र की आज्ञा में रहते हैं।

इन्द्र के प्रासादों के चारों दिशाओं में देवियों के स्वर्णमयी प्रासाद होते हैं, उनमें इन्द्र की वल्लभाएं और देवागंनाएं रहती हैं। इन्द्र के महल के आगे सुन्दर न्यग्रोध जाति के वृक्ष होते हैं जो कि जम्बू वृक्ष के समान पार्थिव होते हैं, उन वृक्षों के तल में चारों दिशाओं में जिन प्रतिमाएँ विराजमान होती है।

नगर वर्णन ?

स्वर्गों में अकृत्रिम अनादि निधन नगर हैं उनकी संख्या आगम में कही है, ये नगर कम ज्यादा नही होते। पहले स्वर्ग में चौरासी हजार, दूसरे स्वर्ग में अस्सी हजार, तीसरे स्वर्ग में बहत्तर हजार, चौथे स्वर्ग में सत्तर हजार, पांचवें, ठवें स्वर्ग में साठ हजार, सातवें–आठवें स्वर्ग में पचास हजार, नवमें दशवें स्वर्ग में चालीस हजार, ग्याहरवें बारहवें स्वर्ग में तीस हजार तथा तेरहवें स्वर्ग से सोलहवें स्वर्ग तक एक–एक स्वर्ग में बीस बीस हजार नगर हैं।

देवों के दश भेद वर्णन ?

चारों प्रकार के देवों के दश दश भेद हैं उनके नाम जो कि सुनने में सुखकर हैं, ??

निम्न प्रकार हैं :

१. इन्द्र, २. सामानिक, ३. त्रायस्त्रिंश, ४. पारिषद्, ५. आत्मरक्ष,
६. लोकपाल, ७. अनीक, ८. प्रकीर्णक, ९. आभियोग्य, १०. किल्विषक,

इस प्रकार यें दश भेद होते हैं।

इनमें व्यन्तर और ज्योतिष्क देवों के त्रासस्त्रिंश और लोकपाल यें दो भेद नही होते, इसलिए इनके आठ भेद कहे गए हैं, इन सबमें इन्द्र प्रधान होता है। जिस प्रकार मनुष्य लोक में राजा सबसे बड़ा होता है उसी प्रकार इन्द्रसभा में सबसे ऊँचे आसन पर बैठने वाला इन्द्र होता है, सब देव जिसकी आज्ञा मानते हैं वह इन्द्र कहलाता है। सौधर्म स्वर्ग की सभा का नाम सुधर्मा हैं।

जो राजा के समान सुख भोगता है, जिसकी आज्ञा देवगण मानते हैं तथा जो अन्य देवों में असाधारण अणिमादि गुणों के संबंध से शोभते हैं, वें इन्द्र कहलाते हैं। जो इन्द्र के समान होता है, माता दृ पिता के समान जिनका आदर होता है वें देव सामानिक देव कहलाते हैं। जो मंत्री और पुरोहित के समान हैं, वें त्रासस्त्रिंश कहलाते हैं। यें तेंतीस ही होते हैं इसीलिए वें त्रायस्त्रिंश कहलाते हैं।

जो सभा में मित्र और प्रेमीजनों के समान होते हैं, वें पारिषद् कहलाते हैं।

जो अंगरक्षक के समान हैं, वें आत्मरक्षक कहलाते हैं।

कोतवाल के समान देव या जो लोक का पालन करते हैं, वें लोकपाल कहलाते हैं।

सेना के समान देव, जैसे यहाँ सेना है उसी प्रकार सात प्रकार के पदाति आदि अनीक कहलाते हैं।

जो गाँव और शहरों में रहने वालों के समान हैं, उन्हें प्रकीर्णक कहते हैं।

जो दास के समान वाहन आदि कर्म में प्रवृत्त होते हैं, वें आभियोग्य कहलाते हैं।

चाण्डाल की तरह के देव किल्विषक कहलाते हैं। जो सीमा के पास रहने वालों के समान हैं, वें किल्विषक कहलाते हैं। किल्विष पाप को कहते हैं। इसकी जिनके बहुलता होती हैं, वें किल्विषक कहलाते हैं। इस प्रकार देवों के दश भेद होते हैं, स्वर्ग से ऊपर ग्रैवियक आदि में सब देव समान होते हैं उनमें कोई भेद नही होता है, इसलिए वें अहमिन्द्र कहलाते हैं।

स्वर्गों में हीनाधिकता

स्वर्ग के देवों में सुख, कांति, लेश्याविशुद्धि व इन्द्रियों के विषय और अवधि ज्ञान का विषय नीचे वाले देवों से ऊपर के देवों में अधिक होता है और गति, शरीर और परिग्रह अभिमान में ऊपर दृ ऊपर हीनता होती हैं।

स्वर्गों में इन्द्रों का वर्णन ?

सोलह स्वर्गों में बारह इन्द्र होते हैं, प्रथम स्वर्ग से चौथे स्वर्ग अर्थात प्रारंभ के चार स्वर्गों में एक एक इन्द्र होता है, पांचवें दृ छठवें इन दो स्वर्गों में एक इन्द्र होता है, सातवें –आठवें, नौवें दृ दशवें, ग्याहरवें दृ बारहवें स्वर्गों में इन दो दो स्वर्गों में एक एक इन्द्र होता है। तेरहवें स्वर्ग से लेकर सोलहवें स्वर्ग तक प्रत्येक में एक एक इन्द्र होता है। इस प्रकार सोलह स्वर्गों में बारह इन्द्र होते हैं।

इन बारह इन्द्रों में छः तो दक्षिणेन्द्र और छः उत्तरेन्द्र होते हैं, सौधर्मेन्द्र, सानत्कुमार, ब्रह्मा, लान्तव, आनत और आरण यें छः दक्षिणेन्द्र और शेष छः उत्तरेन्द्र हैं। बारह इन्द्र और बारह उपेन्द्र हैं। स्वर्गों के देव कल्पवासी और ऊपर के देव कल्पातीत कहलाते हैं।

स्वर्ग के ऊपर नव ग्रैवियक, नव अनुदिश, पांच अनुत्तर विमानों के देव अहमिन्द्र कहलाते हैं। उनके वहां देवागंनाएं नही होती, सब समान होते हैं। अपने अपने विमानों को छोड़कर वें अन्यत्र कहीं नहीं जाते। वें बहुत काल तक पूर्व भव में बँधे हुए पुण्य को भोगते हैं। जो मनुष्य पर्याय में मुनि होकर महान तप करते हैं वें ही वहां जन्म लेते हैं।

स्वर्गों में लेश्या का वर्णन -

पहले – दूसरे स्वर्ग के देवों में पीत लेश्या, तीसरे दृ चौथे में पीत दृ पद्म, पांचवें से आठवें तक पद्म लेश्या, नवमें से बारहवें स्वर्ग तक पद्म और शुक्ल लेश्या, तेरहवें स्वर्ग से नव ग्रैवियक तक शुक्ल लेश्या तथा अनुदिश और अनुत्तर विमानों में परम शुक्ल लेश्या कही गयी है, इस प्रकार उर्ध्व लोक के देवों की भाव लेश्या जिनागम में वर्णित हैं।

स्वर्ग में देवों की उत्कृष्ट आयु का वर्णन

पहले व दूसरे के देवों की उत्कृष्ट आयु दो सागर से कुछ अधिक, तीसरे चौथे स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयु सात सागर से कुछ अधिक, पांचवें छठवें स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयु दश सागर से कुछ अधिक, सातवें आठवें स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयु चौदह सागर, नवमें दशवें स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयु सोलह सागर, ग्याहरवें बारहवें स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयु अठारह सागर, तेरहवें चौदहवें स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयु बीस सागर, पन्द्रहवें और सोलहवें स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयु बाईस सागर की है।

इनसे ऊपर नौ ग्रैवियक में उत्कृष्ट आयु क्रम से एक एक सागर की उत्कृष्ट आयु है। जैसे : प्रथम ग्रैवियक में तेईस सागर की व अंतिम नवमें ग्रैवियक में एक एक सागर बढ़ाते हुए इकतीस सागर की आयु है।

नव अनुदिशों में बत्तीस सागर और पांच अनुत्तर विमानों में तैंतीस सागर की उत्कृष्ट आयु है। इस प्रकार उर्ध्व लोक के देवों की उत्कृष्ट आयु जिनेन्द्र देव ने कही है।

स्वर्ग में देवों की जघन्य आयु का वर्णन ?

पहले व दूसरे स्वर्ग की जघन्य आयु एक पल्य, तीसरे चौथे स्वर्ग की जघन्य आयु दो सागर, पांचवें छठवें स्वर्ग की जघन्य आयु सात सागर, सातवें आठवें स्वर्ग की जघन्य आयु दस सागर, नवमें दसवें स्वर्ग की जघन्य आयु चौदह सागर, ग्यारहवें बारहवें स्वर्ग की जघन्य आयु सोलह सागर, तेरहवें चौदहवें स्वर्ग की जघन्य आयु अठारह सागर, पन्द्रहवें सोलहवें स्वर्ग की जघन्य आयु बीस सागर की होती है।

प्रथम ग्रैवियक की जघन्य आयु बाईस सागर, दूसरे ग्रैवियक की जघन्य आयु तेईस सागर, तीसरे ग्रैवियक की जघन्य आयु चौबीस सागर, चौथे ग्रैवियक की जघन्य आयु पच्चीस सागर, पांचवें

ग्रैवियक की जघन्य आयु छब्बीस सागर, छठे ग्रैवियक की जघन्य आयु सत्ताईस सागर, सातवें ग्रैवियक की जघन्य आयु अठ्ठाईस सागर, आठवें ग्रैवियक की जघन्य आयु उनतीस सागर, नवमें ग्रैवियक की जघन्य आयु तीस सागर की होती है।

नव अनुदिशों में जघन्य आयु इकतीस सागर हैं, कहीं कहीं बत्तीस सागर भी कहा हैं ।

पांच अनुत्तर विमानों में जघन्य आयु और उत्कृष्ट आयु तैंतीस सागर कही है और कहीं कहीं बत्तीस सागर कही है ।

देवों में आहार का समय ?

जिन देवों की एक सागर की आयु है उनका एक हजार वर्ष में एक बार दिव्य अमृतमय मानसिक आहार होता है।

जिन जिन देवों की जितने सागर की आयु है उतने उतने हजार वर्षों में उनका आहार होता है। देवों के आहार का यह नियम है।

इन्द्रों की सेना व परिवार वर्णन ?

इन्द्र के वृषभ, तुरगंम, रथ, गज, पदाति, गंधर्व, नर्तक अर्थात बैल, घोड़े, रथ, हाथी, पैदल, गाने वाले और नृत्य करने वाले ऐसे सात प्रकार की सेना वाले देव होते हैं इन्हें अनीक देव कहते हैं।

इस प्रकार सात सात प्रकार की सेना प्रत्येक इन्द्र की होती है। सौधर्म इन्द्र के एक करोड़ छः लाख अड़सठ हजार बैल होते हैं, और इतने ही संख्या में तुरंग (घोड़े) आदि अन्य सेनाएँ होते हैं।

इन्द्रों की देवागंनाओं का वर्णन ?

सौधर्म और ईशान इन्द्र के एक एक ज्येष्ठ देवी अर्थात प्रधान शची होती है और अत्यन्त सुंदर सोलह सोलह हजार पारिवारिक देवियाँ होती है। सानत्कुमार इन्द्र के आठ हजार देवियाँ और माहेन्द्र स्वर्ग के चार हजार, ब्रह्मेन्द्र के दो हजार, तथा लांतवेन्द्र और महाशुक्र इन्द्र के एक एक हजार पारिवारिक देवियाँ होती हैं। सहस्रार इन्द्र के पाँच सौ और आनत, प्राणत, आरण और अच्युत इन चार इन्द्रों के ढ़ाई सौ ढ़ाई सौ पारिवारिक देवियाँ होती हैं।

वल्लभाओं का वर्णन ?

प्रथम और द्वितीय स्वर्ग सौधर्म और ईशान इन्द्र के बत्तीस हजार वल्लभाएं होती हैं। सानत्कुमार और माहेन्द्र इन्द्र के आठ हजार वल्लभाएं होती हैं। ब्रह्मेन्द्र के दो हजार, लांतवेन्द्र के पाँच सौ,महाशुक्र के ढ़ाई सौ तथा सहस्रार इन्द्र के सौ पच्चीस वल्लभाएं होती हैं। आनत, प्राणत, आरण और अच्युत इन चार इन्द्रों के त्रेसठ त्रेसठ वल्लभाएं होती हैं इस प्रकार की वल्लभाओं की संख्या का प्रमाण हैं।

देवों के मुकुट चिन्ह वर्णन ?

सौधर्म आदि स्वर्गों के इन्द्र और देवों के नौ प्रकार के चिन्ह होते हैं उनके नाम हैं कृ सुअर, हिरण, भैंसा, मछली, मेंढक, छागला, बैल, कल्पवृक्ष आदि यथाक्रम से देवों के मुकुट पर यें चिन्ह होते हैं यें मुकुट रत्न और मणियों के बने होते हैं, इन मुकुट चिन्हों से इन्द्रों की पहचान होती हैं।

कल्पातीत देवों का वर्णन ?

स्वर्गों से ऊपर के जो नव ग्रैवियक, नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानों में रहने वाले सब देव अहमिन्द्र कहलाते हैं। उनमें किसी प्रकार की विषमता नही होती सब देव समान होते हैं। अहमिन्द्रों के भी सुंदर सुंदर विमान होते हैं वें सभाओं, गीतशालाओं, चौत्यवृक्षों से युक्त व बड़े आश्चर्यकारी रमणीय महलों से युक्त होते हैं।

उन विमानों की ऊँचाई तीन अधःग्रैवियक में दो सौ योजन तथा मध्य तीन ग्रैवियक में डेढ़ सौ योजन ऊँचे विमान होते हैं। नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानों की ऊँचाई क्रम से पचास और पच्चीस योजन है।

अवधि ज्ञान का क्षेत्र ?

स्वर्गों में पहले और दूसरे अवधि ज्ञान का क्षेत्र पहले नरक, तीसरे चौथे स्वर्ग के देवों का अवधिज्ञान का क्षेत्र दूसरे नरक, पाँचवें स्वर्ग से आठवें इन चार स्वर्ग के देवों का अवधिज्ञान का क्षेत्र, नवमें से बारहवें स्वर्ग तक के देवों का अवधिज्ञान का क्षेत्र चौथे नरक तक, तेरहवें और सोलहवें स्वर्ग के देवों का अवधिज्ञान का क्षेत्र पाँचवें नरक तक हैं, नौ ग्रैवियक के देवों का अवधिज्ञान का क्षेत्र छठवें नरक तक और नौ अनुदिश के देवों का अवधिज्ञान का क्षेत्र सातवें नरक होता है। पाँच अनुत्तर विमानों के देवों का अवधिज्ञान का क्षेत्र चौदह राजू प्रमाण त्रस नाली पूर्ण तक होता है।

स्वर्गों की देवागंनाओं की आयु ?

स्वर्ग के छः दक्षिणेन्द्र जो कि एक भवावतारी होते हैं उनकी देवागंनाओं की उत्कृष्ट आयु क्रम से पांच, नौ, तेरह, सत्रह, चौंतीस तथा अड़तालीस पल्य की है तथा छः उत्तरेन्द्र की देवागंनाओं की उत्कृष्ट आयु क्रम से सात, ग्यारह, तेईस, सत्ताईस, इकतालीस और पचपन पल्य की जिनेन्द्र भगवान ने कही है।

देवों में गुणस्थान आदि का वर्णन

देवों में प्रारंभ के प्रथम गुणस्थान से लेकर चार गुणस्थान होते हैं, पर्याप्तियां छहों होती है, प्राण दश, संज्ञायें चार, इन्दिय पांच, त्रस काय, योग ग्यारह, वेद दो, दर्शन तीन, ज्ञान छः इस प्रकार कुछ वर्णन यहाँ मैंने किया है, इनका विस्तृत वर्णन जिनागम से जानना चाहिए। प्रखर जैन भोपाल

इस पर जैनाचार्य कहते है कि – साधारण मनुष्य को भी थोड़ा सा ही घूम लेने पर आखों में घूमनी आने लगती है (चक्कर आने लगता है), कभी–कभी खंड देश में अत्यल्प भूकम्प आने पर भी शरीर में कंपकंपी, मस्तक में भ्रांति होने लग जाती है तो यदि डाकगाड़ी के वेग से भी वेगरूप पृथ्वी की चाल मानी जायेगी तो ऐसी दशा में मस्तक, शरीर, पुराने गृह, वूह्पजल आदि की क्या व्यवस्था होगी। बुद्धिमान स्वयं इस बात पर विचार कर सकते है।